समयसार, ३४ गाथा, टीका। फिर से — **यह भगवान ज्ञाता (-द्रव्य....) आत्मा,** भगवान ज्ञाता-आत्मा, वह तो जानन-देखन स्वभावस्वरूप प्रभु है, वह ज्ञाता जानन-देखन — ऐसा चन्द्र-सूर्य जैसा प्रकाशरूप, वह जड़ प्रकाश है, यह (आत्मा) चैतन्यप्रकाश है — ऐसा आत्मा **वह अन्य द्रव्य के स्वभाव से होनेवाले....** कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में होनेवाले शुभ-अशुभराग / विभावभाव, **अन्य समस्त परभावों को,....** वह परभाव / विकारीभाव **उनके अपने स्वभावभाव से व्याप्त न होने से....** अपना ज्ञानानन्दस्वभाव, उस स्वभाव से विभाव में व्याप्त, अर्थात् परिणमन न होने से। आहाहा! **पररूप जानकर....** वह विभाव समकिती को ज्ञानी को पररूप जानकर, उसकी बात है। वह पुण्य और पाप का आचरण, अव्रत का आचरण है, उसे - समकिती को, ज्ञानी को (है) तो वह जानकर की यह तो राग है, विकार है, मेरे स्वभाव से मैं परिणमन करूँ - ऐसी चीज नहीं है। स्वभाव तो स्वभावरूप से परिणमे - ऐसी चीज है। अत: मेरा चैतन्य आनन्द ज्ञानस्वभाव उस अन्य भाव के परिणमने के योग्य नहीं है। आहाहा!

व्याप्त न होने से पररूप जानकर,.... सम्यग्दृष्टि जीव, धर्मी जीव अपने स्वभाव से विभावरूप न होने के योग्य मैं तो हूँ — ऐसा जानकर, आहाहा! **त्याग देता है;....** आहाहा! रागरूप जो अव्रत का आचरण था, वह मैं तो ज्ञाता हूँ-दृष्टा हूँ, इस मेरे स्वभाव से विभावरूप परिणमन का-व्याप्त होने को मैं योग्य नहीं हूँ। मेरा स्वभाव ऐसा है नहीं। आहाहा!

देखो, यह प्रत्याख्यान! यह **त्याग देता है। इसलिए जो पहले जानता है...** ज्ञानस्वभाव में पहले जानता है कि यह रागादि विकार, वह पर है। आहाहा! **वही बाद में त्याग करता है,...** जानता है, वही अपने में स्थिर हो जाता है। आहाहा! **अन्य कोई त्याग करनेवाला नहीं है....** जाना है कि यह राग है, अस्थिरता मुझमें है; मेरा स्वभाव रागरूप परिणमने के योग्य तो नहीं, तथापि परिणमन है, तो वह रागादि... यह प्रत्याख्यान की बात है न? त्याग करनेवाला दूसरा तो कोई नहीं। जाना है कि यह राग है, विकार है, विभाव है; बस, जाना तो अपने में स्थिर हो जाता है। ऐसा तो अभी निश्चय करता है - ऐसा कहते हैं।

इस प्रकार आत्मा में निश्चय करके,.... इस प्रकार प्रथम आत्मा में निश्चय करके। **प्रत्याख्यान के (त्याग के) समय....** अपने स्वरूप में लीन - स्वसंवेदन होने के काल में। आहाहा! **प्रत्याख्यान करनेयोग्य....** राग का त्याग करने के योग्य। अरे! ऐसी बातें! **परभाव की उपाधिमात्र से....** जो विकारभाव है, वह तो परभाव की उपाधि है। उसके **प्रवर्तमान त्याग के कर्तृत्व का नाम....** वह विकार का त्याग, मैं करता हूँ — यह तो नाममात्र (कथनमात्र) है। अपने स्वरूप में स्थिर होता है, वहाँ राग का त्याग हो जाता है, उसको (राग का) त्याग किया - ऐसा कथनमात्र है। आहाहा! ऐसी व्याख्या लोगों को कठिन पड़ती है। ऐसा कि पाठ में तो इतना है। **सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई** परभाव का प्रत्याख्यान किया अर्थात् यह बाहर से करते हैं न! इसलिए ये लोग ऐसा कहते हैं कि इन टीकाकारों और विद्वानों ने वस्तु को गहरी, गम्भीर बना दिया परन्तु यह टीका की है, परन्तु यह पाठ में है न **'पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं'** चौथा पद है या नहीं? **णाणं** अर्थात् आत्मा; ज्ञान शब्द से यहाँ आत्मा। पाठ है न?

णाणं णियमा मुणे टीका के करनेवाले तो ऐसा कहते हैं, यह बात तो अत्यन्त सरल थी, १५५ (गाथा) का प्रश्न हुआ था, वहाँ दिल्ली है न १५५ ? '**जीवादि सद्दहणं**' ऐसा कि वहाँ तो '**जीवादि सद्दहणं**' इतना है परन्तु उसका अर्थ क्या हुआ उसमें ? कि जीवादिक की श्रद्धा, अर्थात् प्रतीति मात्र विकल्प से-ऐसा नहीं। वह जीवादिक की श्रद्धा (अर्थात्) उसरूप आत्मा ज्ञानरूप, अर्थात् आत्मारूप परिणमन होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। तब उन लोगों को ऐसा लगा कि यह शास्त्र की व्याख्या गहरी कर डाली। सीधी बात थी कि '**सव्वे भावे पच्चखाई**', '**जीवादि सद्दहणं**' समकित, परन्तु '**जीवादि सद्दहणं**' समकित कहना किसे ? समझ में आया ?

यह तो श्वेताम्बर में ऐसा कहते हैं 'भावेणं सद: अंत:तत्त्व' नव तत्त्व को भाव से-अन्त:करण से श्रद्धे, वह समकित है परन्तु वह भाव क्या ? अट्ठाईसवाँ अध्ययन है — मोक्षमार्ग, उत्तराध्ययन श्वेताम्बर, हमारे तो सब व्याख्यान में चल गया न, सम्प्रदाय में, बोटाद में, हजारों लोग आते थे, सभा में। वहाँ यह कहा अन्त:करण से परन्तु अन्त:करण अर्थात् क्या ? आहाहा ! अन्तर आत्मस्वभाव का परिणमन करके श्रद्धा करना, समकित करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा ! यहाँ भी १५५ में यह कहा '**जीवादि सद्दहणं**' ज्ञानरूप अर्थात् आत्मा, वह शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, उसरूप से उसका श्रद्धारूप परिणमन हो जाना, निर्विकल्प शान्तिरूप आंशिक परिणमन हो जाना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा !

यहाँ - प्रत्याख्यान में यह कहा, ऐसा कि पाठ तो इतना था। '**सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई**' परन्तु इसका अर्थ क्या ? अर्थ तो पाठ में दिया है न ? '**णाणं णियमा मुणेदव्वं**' आत्मा निश्चय से जानना... प्रत्याख्यान को यह आत्मा निश्चय से जानना - ऐसा है या नहीं ? तो उसका अर्थ करना पड़ेगा या नहीं ? समझ में आया ? कि आत्मा — अपने स्वरूप का अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, आत्मा के आनन्दरूप ज्ञानरूप परिणमन हुआ, वह तो सम्यग्दर्शन (है)। अब उस सम्यग्दर्शन में ज्ञान तो साथ में है तो वह जानता है कि मुझमें अभी अव्रत का, अत्याग का, रागभाव का परिणमन मुझमें है। अब, उस राग का त्याग करना है तो क्या ? जो ज्ञानस्वभावी भगवान.... यह राग है — ऐसा जाना, जानकर ज्ञान में रह गया — स्थिर हो गया, वह प्रत्याख्यान है। आहाहा ! इसे तो ऐसा कि

प्रत्याख्यान, अर्थात् सर्वभाव का प्रत्याख्यान, उसमें ऐसी प्रत्याख्यान की व्याख्या ? टीकाकार ने - विद्वानों ने (अर्थ) दुरुह कर डाला। अरे बापू! ऐसा नहीं है, उसका स्पष्टीकरण किया है। आहाहा! कि प्रत्याख्यान इसको कहते हैं। प्रत्याख्यान कहो या चारित्र कहो, प्रत्याख्यान — राग का त्याग कहो या चारित्र कहो। १५५ गाथा में आता है न भाई ? '**जीवादि सद्दहणं सम्मत्त जीवादि ज्ञानम्**' जीवादि पदार्थ का-जीव का-ज्ञानस्वरूप का ज्ञान, उस ज्ञानरूप परिणमना, वह ज्ञान और चारित्र रागादि वर्जन ज्ञान में, रागादि वर्जन ज्ञान में — यह चारित्र (है) तो उसका यह (अर्थ यहाँ हुआ कि) जो राग है, वह जाना कि यह राग है, है साथ, परतरफ का परिणमन छूट गया और ज्ञान, ज्ञानरूप परिणमन हुआ, उसका नाम प्रत्याख्यान है।

इसलिए लोगों को ऐसा (लगता है) कि पाठ ऐसा सरल है, उसमें भी टीकाकार ने इसे ऐसा (दुरुह) कर डाला है। अभी अर्थ आया है न समयसार का, बस गाथा का अर्थ-साधारण शब्दार्थ। अरे भाई! इस गाथा में जो भाव है, उसका ही स्पष्टीकरण किया है। गाय और भैंस के स्तन में जो दूध है, स्तन में दूध (है) तो उसमें से निकालते हैं, वह जो है, उसमें से निकालते हैं; वैसे ही गाथा में (जो) भाव है, वह टीकाकार ने तर्क से उसका स्पष्टीकरण किया है। समझ में आया ? लोगों को बाहर के आचरण की श्रद्धा और ज्ञान-शास्त्र का ज्ञान और यह व्रत आदि नियम, बस यही मोक्ष का मार्ग है (परन्तु) यह तो बन्ध का मार्ग है। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी मुक्तस्वरूप प्रभु का राग से पृथक् होकर अपने आत्मा की प्रतीति-निर्मल सम्यग्दर्शन-वीतरागी पर्याय से प्रतीति करना; राग के अभावरूप वीतरागी सम्यग्दर्शन पर्याय से प्रतीति करना, आहाहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन है। और राग के त्यागरूप आत्मा का ज्ञानरूप परिणमन होना, वह ज्ञान है और आत्मा का, राग का जानना हुआ, जानकर उसमें परिणमन नहीं हुआ और अपने में (ज्ञान में) स्थिर हुआ, उसका नाम प्रत्याख्यान — ज्ञान प्रत्याख्यान है, यह आया है न ? चौथा पद। टीका में है, पाठ में यही है — ज्ञान प्रत्याख्यान 'ज्ञान' शब्द से (आशय) आत्मा।

भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वरूप का भान है और फिर रागादि का आचरण पर्याय

में है, वह ज्ञान जानता है, मेरी पर्याय में दु:ख / आकुलता / राग / अत्याग है। यह जाना और जानकर ज्ञान, ज्ञान में रह गया। ज्ञान (का) राग में परिणमन नहीं हुआ, वह ज्ञानस्वरूपी आत्मा, ज्ञान में रह गया, उसका नाम प्रत्याख्यान है। '**णाणं णियमा**' - ऐसा आया न! '**णाणं णियमा मुणेदव्वं**' यह आत्मा निश्चय से चारित्र और प्रत्याख्यान है। ऐसा कठिन पड़ता है, इसलिए लोगों को ऐसा (लगता है) कि ऐसा सीधा-साधा अर्थ था, उसमें ऐसा गम्भीर अर्थ निकाला। यह अर्थ ही गम्भीर है। है? यह तो स्पष्टीकरण है, भाई! तुझे प्रत्याख्यान कब होगा? कैसे होगा? - उसका स्पष्टीकरण है। भले उसे अभी प्रत्याख्यान न हो, परन्तु प्रत्याख्यान हो तब कैसे होगा? आहाहा!

भगवान (निज आत्मा) ज्ञान और आनन्दस्वरूप प्रभु, वह अपने ज्ञानस्वभावी भगवान के प्रति ज्ञान की प्रतीति-सम्यग्दर्शन की प्रतीति, वह पूरे स्वरूप की प्रतीति निर्विकल्प, वह आत्मा की परिणमन दशा है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है और वह आत्मा का ज्ञान, ज्ञानस्वरूपी भगवान का ज्ञान; शास्त्रज्ञान, वह ज्ञान नहीं। आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूपी, ज्ञान प्रधान अनन्त गुण का पिण्ड परन्तु ज्ञान प्रधान कथन चलता है न? कल आया था। ज्ञान प्रधान अनन्त गुण का पिण्ड... दोपहर को आया था। आहाहा! ऐसे भगवान ज्ञान प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप प्रभु! अपने में जानने में आया कि यह राग है, यह जाना और रागमय जानकर अंश में परिणमन नहीं हुआ और ज्ञान (का) ज्ञानरूप परिणमन हुआ, उसका नाम प्रत्याख्यान / चारित्र है। आहाहा! यह स्वसन्मुख में स्थिर हुआ, स्वसन्मुख दृष्टि-ज्ञान तो है परन्तु अब स्वसन्मुख अन्तर में (एकाग्रता) करके स्थिर हो गया, जम गया। ज्ञान, ज्ञान में जम गया; आत्माराम आत्मा में रम गया। आहाहा!

ऐसी बातें! इसलिए लोगों को अर्थ दूसरा किया और ऐसा किया - ऐसा कहते हैं। अरे भगवान! तुझे बात न जँचे, इसलिए दूसरा अर्थ किया - ऐसा कहलायेगा?

श्रोता : आचार्यों ने दूसरा अर्थ किया ऐसा कहना कहीं योग्य है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह ऐसा ही कहते हैं, भाषा ऐसी है। आते हैं न विद्यानन्दजी, का। उसमें पण्डित बलभद्र ने यह लिखा है परन्तु उनका कहना है, इसलिए लिखा है। आहाहा! ऐसा कि '**जीवादि सद्दहणं सम्मत्तं**' अर्थात् जीवादि की श्रद्धा, वह समकित

परन्तु फिर उसकी व्याख्या कहते हैं — आत्मा ज्ञानस्वरूप, उसरूप परिणमे कहना, वह समकित और यह सब लम्बा किया।

श्रोता : ज्ञान, ज्ञानरूप परिणमे।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा, आत्मारूप परिणमे — ऐसा उनका कहना है ? और तब सम्यग्दर्शन है न ? एकत्वबुद्धि में रागरूप परिणमता था, तब तक तो मिथ्यात्व था। समझ में आया ? आहाहा ! राग, विकार और स्वभाव दोनों भिन्न हैं, तथापि इस रागरूप मैं हूँ — ऐसी एकत्वबुद्धि थी, तब तो मिथ्यात्व है। अब इस मिथ्यात्व का त्याग... ज्ञान, ज्ञानरूप परिणमे और रागरूप न हो, भले राग हो परन्तु राग की एकत्वबुद्धि न हो, न हो और आत्मा, आत्मारूप हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। भगवान तेरी बात तो ऐसी है प्रभु ! परन्तु अब लोगों ने क्या कर डाला है ? यह सब फेरफार कर डाला है। आहाहा !

वह यहाँ (कहते हैं) **इस प्रकार आत्मा में निश्चय करके,....** देखो ! **प्रत्याख्यान के समय....** जब प्रत्याख्यान — स्वरूप का शुद्धरूप परिणमन होने के काल में, आहाहा ! **प्रत्याख्यान करने योग्य....** राग **परभाव की उपाधि....** यह रागादि है, वह पर की उपाधि है। उसका त्याग वह तो नाममात्र कथन है। यह ज्ञान-भगवान, ज्ञान में जम गया; आतमराम, आत्मा में रम गया, बस ! वह प्रत्याख्यान है। आहाहा ! लोगों को ऐसा है कि बाहर से प्रत्याख्यान किया, इसलिए प्रत्याख्यान हो जाता है - ऐसा मनवाना है। ऐसा नहीं होता।

श्रोता : सत्य समझने का प्रयत्न नहीं करना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा ! भाई ! प्रत्याख्यान अर्थात् पच्चखाण; पच्चखाण, अर्थात् रागादि की अस्थिरता का त्याग। यह त्याग कहना, कहते हैं वह भी नाममात्र है, यहाँ तो। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी आनन्द, सच्चिदानन्द प्रभु, यह आत्मा, आत्मा के आनन्द में रम गया (जम गया)। ज्ञान, अर्थात् आत्मा; आत्मा, आत्मा में लीन हो गया। यह जो राग में लीन था, उसे छोड़कर (आत्मा में लीन हो गया)। यह तो पर है, मेरी चीज में यह नहीं — ऐसा जानकर ज्ञानस्वरूप, ज्ञान में रम गया, उस काल में प्रत्याख्यान कहा जाता है। आहाहा ! ऐसी चारित्र की व्याख्या....

अब यहाँ तो पंच महाव्रत का परिणाम, वह चारित्र है (आहा) वह चारित्र,

व्यवहारचारित्र से निश्चयचारित्र होगा (- ऐसा नहीं है)। अरे भगवान! अरे...रे भाई! प्रभु! तू लुट गया है। तू ऐसी मान्यता से लुट गया है। भगवान तो ऐसा कहते हैं प्रभु! तेरी चीज तो अन्दर इन शुभ-अशुभराग के विभाव से तेरी चीज / स्वभाव भिन्न है; उस स्वभाव का जिसे सम्यक् ज्ञान हुआ, अनुभव हुआ, उसको भी रागभाव रहता है, होता है परन्तु मेरे स्वभाव से मैं रागरूप परिणमूँ — ऐसी चीज नहीं है। आहाहा!

मेरा प्रभु ज्ञान और आनन्दस्वरूपी प्रभु, वह रागरूप हो - ऐसा नहीं है। ऐसा जानकर, राग का अभाव होकर स्वभाव की शुद्धता का परिणमन प्रत्याख्यान है, उसका नाम चारित्र और प्रत्याख्यान कहते हैं। अरेरे! क्या हो? आहाहा! सम्यग्दर्शन हुआ और सम्यग्ज्ञान हुआ तो चारित्र क्यों नहीं लेते? - ऐसा कहते हैं। भाई! चारित्र ऐसा कहीं... आहाहा! भाई! चारित्र तो भगवान पूर्णानन्द का नाथ...

श्रोता : चारित्र लेना, अर्थात् भगवान हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे, वह तो भगवान हो गया। चारित्र अर्थात् आहाहा! पंच परमेष्ठी-आचार्य, उपाध्याय, साधु। आहाहा! यह कोई बाहर की चीज नहीं है, यह तो अन्तर आनन्द-स्वरूप में आनन्द की उग्रतारूप परिणमित होना, इसका नाम साधु, आचार्य और उपाध्याय है। बाहर का नग्नपना और वह कोई चीज नहीं है। आहाहा!

अलिंगग्रहण (प्रवचनसार, गाथा १७२) में ऐसा कहा है — यति की बाह्य क्रिया का जिसमें अभाव है... यह पंच महाव्रत का विकल्प आदि या नग्नपना, इस स्वभाव में तो उसका अभाव है। अलिंगग्रहण में आता है न भाई? यति की बाह्यक्रिया... आहाहा! परन्तु क्या यति की बात! यह पंच महाव्रत आदि क्रिया के विकल्प नग्नपना, वस्त्ररहितपना- इस स्वभाव में तो उसका अभाव है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा अलिंगग्रहण (अर्थात्) राग से और पर से पकड़ में नहीं आता, क्योंकि वह महाव्रतादि का राग और नग्नपने का तो स्वभाव में अभाव है। अतः स्वभाव में अभाव है तो उससे पकड़ने में आता है? अलिंगग्रहण। लिंग अर्थात् रागादि से ग्रहण में नहीं आता। आहाहा! लोगों को ऐसा कठिन पड़ता है बापू! मार्ग तो यह है भाई!

श्रोता : अनभ्यास से कठिन पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभ्यास नहीं और इस प्रकार का सुनने को मिलता नहीं। आहा! बाहर का सुनने को मिलता है - यह करो और वह करो। करना वह कहता है तो वह विकल्प है, राग है। राग का करना, इसे (आत्मा को) स्वभाव को सौंपना, वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा! चक्रवर्ती महाराज को ऐसा कहना कि इस महल में से कचरा निकाल दो, आहाहा! समझ में आया? यह भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव को विभाव का करना सौंपना, वह मिथ्यात्वभाव है। (राग) होता है परन्तु मैं करूँ, करने योग्य है — ऐसी वह चीज नहीं है। आहाहा! अनन्त आनन्द का बादशाह प्रभु, अनन्त गुण का बादशाह, स्वामी, वह अपने गुणरूप परिणमित हो... समझ में आया? इस रागरूप परिणमना, (पर्याय में) भले ही परिणमे, वह ज्ञान जानता है परन्तु परिणमना वह मेरी चीज है, मेरे परिणमन के योग्य मैं हूँ - ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी अद्भुत बातें!

परभाव की उपाधिमात्र से प्रवर्तमान त्याग के कर्तृत्व का नाम (आत्मा को) होने पर भी,.... क्या कहते हैं? भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूपी प्रभु, अपने में जाना कि यह रागादि है... मुझमें समकित तो है, ज्ञान है, आंशिक स्वरूप का आचरण भी है परन्तु चारित्र नाम धराये ऐसा आचरण नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

वह जब अन्तरस्वभाव से राग पर है — ऐसा जाना तो सम्यग्दर्शन में आया है पहले, परन्तु जाना उसी समय उसरूप न होना और ज्ञान-आनन्दरूप होना, उसका नाम चारित्र और प्रत्याख्यान है। अरे! इसकी विधि का पता नहीं पड़ता। आहाहा!

शीरा / हलुवा होता है तो पहले आटा, घी पी जाता है, आटा, घी; बाद में गुड़-शक्कर का पानी डालते हैं न? तो यह (आटा, घी) पी जाता है तो हमें महंगा पड़ता है। अत: क्या करना है? कि पहले गुड़ के पानी में आटा सेंको, फिर डालो घी-वह (हलुवा तो) नहीं बनेगा (परन्तु) लेई भी नहीं बनेगी, है! आहाहा! महंगा पड़े परन्तु यह करने से ही छुटकारा है।

इसी प्रकार, ऐसा प्रत्याख्यान? हाँ, ऐसा प्रत्याख्यान। समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्धस्वभाव का परिणमन श्रद्धाज्ञान का है। आंशिक स्थिरता भी है परन्तु विशेष अस्थिरता बहुत है। आहाहा! तो जब यहाँ प्रत्याख्यान के समय उसको जाना कि यह है

और जानकर वहाँ से हटकर ज्ञान में स्थिर हुआ, उसका नाम प्रत्याख्यान है। अब ऐसी व्याख्या। आहाहा! भाषा तो सादी परन्तु प्रभु, भाव तो है वह है। आहाहा!

आहा! **परभाव की उपाधिमात्र से प्रवर्तमान त्याग के कर्तृत्व का नाम (आत्मा को) होने पर भी,....** नाममात्र है। **परमार्थ से देखा जाये तो परभाव के त्याग कर्तृत्व का नाम अपने को नहीं है,....** इस राग का त्याग आत्मा करता है - ऐसा है ही नहीं, क्योंकि वस्तु, वस्तुरूप जहाँ है, वहाँ स्थिर हुए, वहाँ राग छूट गया तो राग का त्याग किया, यह तो नाममात्र कथन है। आहाहा! अब ऐसी बातें! इसे प्रत्याख्यान कहना, इसको त्याग-चारित्र कहना, इसको निश्चयव्रत कहना, निश्चयव्रत! स्वरूप, स्वरूप में रम गया और आनन्द का नाथ भगवान, वह आनन्द में रम गया-लीन हो गया। आहाहा! ऐसी व्याख्या!

श्रोता : ऐसी ही व्याख्या होती है, दूसरी होती ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तुस्वरूप ही ऐसा है न भाई! महंगा पड़े परन्तु विधि तो यह है। आटे को (घी में) सेंकने पर घी पी जाये, इसलिए आटे को पहले पानी में सेंकना फिर घी डालो - तेरे तीनों जायेंगे। आटा, घी, और शक्कर, तीनों नष्ट होंगे। सीरा / हलुवा नहीं होगा; इसी प्रकार भगवान आत्मा को पहले सम्यग्दर्शन-ज्ञान में प्रतीति में अन्तरसन्मुख होकर लेना पड़ेगा, महँगा पड़े परन्तु वस्तु तो यह है; और फिर राग के त्याग के लिए, वस्तु के स्वभाव में राग, पर है — ऐसा जाना, ऐसा जानकर ज्ञान, ज्ञान में जम गया। आत्मा, आत्मा में जम गया, यह **'णाणं मुणेदव्वं'** यह ज्ञान, अर्थात् आत्मा प्रत्याख्यान है। आहाहा! ऐसी बातें अब सुनने को मिले नहीं, क्या करे प्रभु? ऐसा अवसर मिला, मनुष्यपने का — अन्यत्र कहीं सुनने को मिले नहीं।

श्रोता : मिले वहाँ विपरीत मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : विपरीत मिले। आहाहा! मार्ग कठिन लगे, दुर्लभ लगे, परन्तु मार्ग तो यह है। आहाहा! 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ', ओहोहो! सन्तों ने क्या करुणा करके टीका की है! आहाहा!

भगवन्त! कल आया था, भगवत्स्वरूप नहीं? भगवानस्वरूप ज्ञान, भगवान ज्ञाता

द्रव्य — संस्कृत में भगवत् ज्ञातृ-द्रव्य, आहाहा! वह जब अपने ज्ञान-स्व को ज्ञेय बनाकर, परज्ञेय का जो ज्ञान करता था, उस पर्याय में स्वज्ञेय का ज्ञान किया, तब उसको सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ। तब अब चारित्र कब होता है? वह ज्ञान स्वरूप का ज्ञान हुआ, ज्ञानस्वरूप की प्रतीति हुई, अनुभव (हुआ), वह ज्ञान और आत्मा राग को अपने स्वभाव से रागरूप होना, वह मेरी चीज नहीं, मेरा स्वभाव नहीं — ऐसा स्वभाव जानकर, स्वभाव में स्थिर हो जाना, स्थिर हो जाना, जम जाना। जैसे पानी है, वह बर्फरूप होकर जम जाता है, बर्फ... वैसे भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु आनन्दस्वरूपी भगवान, उस आनन्द में जम जाना, रम जाना, लीन हो जाना, आहाहा! उसका नाम राग का त्याग नाममात्र है। वस्तु तो वस्तु में स्थिर हो गयी है। पाटनीजी! ऐसी बातें हैं भाई! लोगों को न बैठे, इसलिए फिर विरोध करते हैं। क्या करें बापू? भाई! तुझे तेरी पद्धति का पता नहीं है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र की परिणति की पद्धति का प्रभु, तुझे पता नहीं है। इस कारण तू विरोध करता है कि यह व्रत है और यह क्रिया है, वह चारित्र नहीं... ? अरे प्रभु! सुन तो सही! व्रतादि का भाव तो राग है। आहाहा! इस ज्ञान ने जाना कि यह राग है — ऐसा ज्ञान, ज्ञान में यह पर है — ऐसा जानकर, ज्ञान स्वघर में जम गया, परघर में परिणति नहीं गयी। आहाहा! यह पहले ज्ञान तो करे कि यह चीज ऐसी है। आहाहा!

यहाँ तो भगवान ऐसा कहते हैं सन्त (कहते हैं) कि **परभाव के त्याग कर्तृत्व का नाम अपने को नहीं है,....** आहाहा! है? राग का त्याग आत्मा में है ही नहीं, क्योंकि आत्मा आनन्दरूप रहा, वहाँ त्याग हो गया। राग का त्याग किया — ऐसा तो है ही नहीं। आहाहा! अब ऐसी बातें समझना!

अरे! आठ वर्ष के बालक भी चारित्र ग्रहण करते हैं। आहाहा! राजकुमार, जिनका स्वर्ण जैसा शरीर, आहाहा! भरत चक्रवर्ती के पुत्र १०८ (पुत्र) मणिरत्न के गिल्ली और डण्डे से खेलते थे, इतने में जयकुमार का सुना — जयकुमार पूरे (सैन्य का) सेनापति का नायक, एक व्यक्ति निकला था, (वह कहता है) जयकुमार ने दीक्षा ली है। ओहो! सेनापति-९६ करोड़ सैनिकों का नायक, उसने चारित्र ग्रहण किया, स्वरूप में रमणता

प्रगट की। आहाहा! वे बालक छोटी-छोटी उम्र के — १५, १६, १८-१८ वर्ष की उम्र के १०८ बालक खेल रहे थे। मणिरत्न के गेंद से, अरे! आहाहा! उनकी माता ने सिपाही को-व्यक्ति को भेजा (बालकों का) ध्यान रखना।

अब इन्हें क्या करना? यदि ऐसा कहे कि हमें भगवान के पास दीक्षा लेने जाना है तो साथ में वह सिपाही था। वह ऐसा कहे भाई! चलो हम भगवान के दर्शन करेंगे। ऐसा करके भगवान के पास गये। आहाहा! १८-१८ वर्ष के राजकुमार, स्वर्ण के पुतले जैसे! रत्नमणि की कान्ति का पार नहीं ऐसे पुत्र! प्रभु को कहते हैं प्रभु! हमें चारित्र ग्रहण कराओ, आहाहा! यह कहते हैं कि प्रभु, जहाँ आते हैं, वहाँ अन्दर स्वरूप में स्थिर हो जाते हैं। आहाहा! चारित्र, अर्थात् राग से रहित स्वरूप में रमणता, चरना, रमना, जमना, आनन्द का भोजन करना। आहाहा! पशु चारा चरते हैं न? तो कोई वस्तु हो, उसका चारा चरते हैं न? हरी घास होती है; वैसे ही भगवान आनन्द का नाथ अन्दर अपने आनन्द का चारा चरता है, आनन्द का भोजन करता है, अन्दर आनन्द का ग्रास लेता है, उसका नाम चारित्र है। आहाहा! धन्य अवतार! और यह किये बिना मुक्ति नहीं है। समझ में आया?

अकेले सम्यग्दर्शन, ज्ञान से कहीं मुक्ति नहीं होगी। साथ में चारित्र आयेगा, तब मुक्ति होगी। आहाहा!

श्रोता : सम्यग्दर्शन हो तो चारित्र आये बिना रहता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : रहता ही नहीं, परन्तु यह तो चारित्र होगा, तब ऐसी स्थिति होगी - ऐसा। सम्यग्दर्शन ज्ञान होने पर भी, जो अचारित्र का-विभाव का परिणमन है, उसको ज्ञान जानता है, प्रतीति करता है कि यह मेरी चीज नहीं, मेरा भाव नहीं, परभाव है, उपाधिभाव है — ऐसा जानकर, निरुपाधिस्वरूप अपने स्वभाव में जम जाना। आहाहा! आनन्द का उग्र अनुभव होना, उसका नाम चारित्र है। चरना, अन्दर चरना... गाय चरती है न! वैसे आत्मा में-आनन्दस्वरूप जो क्षेत्र (स्वक्षेत्र) पड़ा है, उसकी अनुभव-दृष्टि तो है; अब उसका अनुभव चरते हैं। आहाहा! आनन्द में-झूले में अन्दर में चरते हैं, उसका नाम प्रत्याख्यान और चारित्र है, प्रभु! आहाहा!

परभाव के त्याग कर्तृत्व का नाम अपने को नहीं है, स्वयं तो इस नाम से

रहित है.... आनन्दस्वरूप भगवान की प्रतीति और ज्ञान हुआ परन्तु विशेष आनन्द जब अन्तर में रमता है, तब विशेष आनन्द आया तो आनन्द में (रमता है तो) राग का अभाव हो गया; यह राग का त्याग किया - ऐसा नाममात्र है। यह वस्तु (आत्मवस्तु) ज्ञानरूप हुई, यह रागरूप हुई ही नहीं। हुई ही नहीं, फिर त्याग किया कहना? आहाहा! त्याग किया वह कथनमात्र है। ऐसा मार्ग!

कायर का कलेजा काँप जाये ऐसा है। मार्ग ऐसा है, ऐसा पहले ज्ञान में इसका निर्धार तो कर। आहाहा! फिर त्याग के समय में ज्ञानस्वरूपी भगवान जो आनन्ददल, ज्ञानदल, स्वभावदल, वीतरागदल (है), उस वीतरागभावरूप जम जाये, वह राग का त्याग किया, यह तो नाममात्र है। यह अन्दर जम गया, राग रहा नहीं तो त्याग किया, यह नाममात्र कहा जाता है। आहाहा! पर के त्याग की तो यहाँ बात है ही नहीं; शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार — इस पर का त्याग और ग्रहण तो आत्मा में है ही नहीं परन्तु उस राग का त्याग भी नाममात्र है। आहाहा! गजब बात है! मालचन्दजी! यह तो इसमें थोड़ी अन्दर बुद्धि चाहिए। आहाहा!

यह भगवान आत्मा, आनन्द का सागर प्रभु — ऐसा भान और ज्ञान हुआ, फिर जहाँ आनन्द की दशा की रमणता में कमजोरी के कारण राग का-दुःख का वेदन है। वह दुःख का वेदन है, वह आनन्द के समय जाना कि, आनन्द के साथ ज्ञान ने जाना कि यह दुःख का वेदन है, यह परभाव है। मेरी चीज नहीं है। आहाहा!

जब अपने आनन्द में जम जाता है-रम जाता है, तब राग आया नहीं तो राग का त्याग किया — ऐसा कथनमात्र है। यह तो रागरूप हुआ ही कहाँ है? यह तो आनन्दरूप हुआ है। स्वभाव रागरूप हुआ और फिर छोड़ता है, यह बात भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, इसलिए लोगों को यह एकान्त है... एकान्त है... ऐसा, प्रभु! करते हैं, हों!

श्रोता : इस बात का पता नहीं पड़ता।

पूज्य गुरुदेवश्री : बापू, मार्ग तो यह है भाई! एकान्त है... ऐसा कि यह व्यवहार, दया, दान, व्रत, भक्ति करते हैं, उससे भी निश्चय हो - ऐसा नहीं मानते हैं। अरे प्रभु! वह

एकान्त तो मिथ्या एकान्त है - मिथ्या अनेकान्त है। आहाहा! सम्यक् एकान्त तो यह है (कि) रागरूप न होना और स्वभाव, स्वभावरूप परिणमन कर जाना। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र की परिणति, मोक्षमार्ग है, बाकी सब बातें हैं। आहाहा! किसी शास्त्र में — ग्रन्थ में ऐसा आया हो कि दया, वह धर्म है परन्तु वह तो व्यवहार की बात है। वरना पर की दया का भाव.... वह तो उसकी टीका करते हैं, पुरुषार्थ सिद्धियुपाय में लिखा है कि पर की दया का भाव वह राग है और राग है, वह स्वरूप की हिंसा है (यह सुनकर) लोग चिल्लाते हैं।

भगवान ज्ञानस्वरूप में राग आया तो राग तो स्वरूप की हिंसा हुई, इतनी अस्थिरता हुई। आहाहा! अब यह कहता है — दया को तो धर्म कहा है और तुम कहते हो राग है, वह हिंसा है। अरेरे प्रभु! तू क्या करता है।

'अहिंसा परमो धर्म:' यह तो राग की उत्पत्ति न होना और वीतरागस्वभाव की उत्पत्ति होना वह 'अहिंसा परमो धर्म:' आहाहा! **परमार्थ से देखा जाये तो परभाव के त्याग कर्तृत्व का नाम अपने को नहीं....** आहाहा! यह रागरूप हुआ ही नहीं न फिर? पहले था, वह जाना, जानकर स्वरूप में स्थिर हो गया और रागरूप हुआ ही नहीं तो राग का त्याग किया, यह नाम कथन है। आहाहा! अरेरे! इस चारित्र की विधि तो यह है। प्रत्याख्यान कहो, पच्चखाण कहो, राग का अभाव-स्वभावरूप कहो, चारित्र कहो, मोक्ष के मार्ग में चारित्र कहो, वह यह है। अरे! ऐसे चारित्र का पता भी नहीं पड़ता। आहाहा!

स्वयं तो इस नाम से रहित है.... भगवान तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप है तो ज्ञान स्वरूप हो गया, उसमें राग के त्याग का नाममात्र... उसमें है नहीं। आहाहा! जैसे प्रज्ञाब्रह्म प्रभु — प्रज्ञा, अर्थात् ज्ञान और ब्रह्म, अर्थात् आनन्द। स्वरूप जैसा है, वैसा हो गया — स्थिरता, उसने राग का त्याग किया, यह तो कथनमात्र है। आहाहा! सुमेरुमलजी! गाथा बहुत अच्छी आयी है — ३१-३२-३३-३४ - तुम आये न ३१ गाथा शुरु हुई, बड़ी अच्छी आयी है। भगवान! आहाहा! राग और शरीर से भिन्न भगवान आनन्द का नाथ विराजता है न! आहाहा!

'कहे विचिक्षण पुरुष सदा में एक हूँ अपने रस से भर्यो अनादि टेक हूँ'

मेरे ज्ञान और आनन्द के वीतरागी स्वभाव से भरा पड़ा हूँ अनादि से, आहाहा! 'मोहकर्म मम नाहीं' कर्म नहीं, हों! राग। राग 'मोह मम नाहीं, नाहीं भ्रमकूप है' परन्तु यह विकार भी भ्रम का कुआँ है, मैं 'शुद्ध चैतनासिन्धु हमारो रूप है' आहाहा! बहिन में (बहिनश्री के वचनामृत में) नहीं आया था? - राग मर्यादित है, मर्यादित है, इसलिए वहाँ से छूटना होगा; अमर्यादित भगवान आत्मा को-स्वरूप को अन्दर पकड़ेगा तो वहाँ से (स्वरूप से) छूटना नहीं होगा। आहाहा! अरेरे! **स्वयं तो इस नाम से रहित है....** इतनी लाईन में कितना भरा है! आहाहा! एक 'जगत' शब्द हो तो इस 'जगत' शब्द में कितना भरा है? सारा लोक! अक्षर तीन ज-ग-त एकाक्षरी कोई काना मात्रा, बिन्दी कुछ नहीं — 'ज ग त' — ऐसा कहने में क्या आया? सारा लोक आ गया। आहाहा! इसी प्रकार इस 'आत्मा' अक्षर में सारा भाव आ गया अन्दर में। दर्शन, ज्ञान, चारित्र का क्या स्वरूप है? वह इसमें आ गया। आहाहा! थोड़ा परन्तु सत्य होना चाहिए। विशेष बड़े-बड़े पूछल्ले — लम्बे-लम्बे लगा दे जानपने के और धारणा के... आहाहा! वैसे तो ग्यारह अंग अनन्त बार कण्ठस्थ किये, उसमें क्या आया? आहाहा! भगवान ज्ञान का पाताल कुआँ अनन्त स्वभाव का ज्ञान से भरा, उसका ज्ञान करना, उसकी प्रतीति करना और उसमें रमना, उसका नाम दर्शन, ज्ञान, चारित्र है। आहाहा! कहो, झांझरीजी! ऐसी बात है भाई! आहा! विमलचन्दजी हैं या नहीं? हाँ, है। ऐसा है।

क्योंकि ज्ञानस्वभाव से स्वयं छूटा नहीं है,.... और जहाँ परिणमन हुआ, वहाँ राग में तो आया ही नहीं न! आहाहा! ज्ञानस्वरूप भगवान पूर्णानन्द प्रभु में दृष्टि और ज्ञान तो था परन्तु अन्दर में रम गया — अन्दर स्वरूप में घर में (रम गया); पर घर में आया ही नहीं और निजघर में रम गया तो परभाव का त्याग तो नाममात्र है-कथनमात्र है। परघर में गया कहाँ है? आहाहा! कहो, नवरंगभाई! इसका नाम प्रत्याख्यान! आहाहा! धन्य काल! धन्य अवसर!! आहाहा! जिस समय प्रत्याख्यान की दशा.... उसको पहले प्रतीति में तो ले कि मार्ग तो यह है। समझ में आया? भले ही कर सके नहीं परन्तु करने योग्य तो यह है। आहाहा!

ज्ञानस्वभाव से स्वयं छूटा नहीं है, इसलिए प्रत्याख्यान ज्ञान ही है.... आया,

चौथा पद। है न चौथा पद? '**णाणं णियमा मुणेदव्वं**' चौथा पद। **इसलिए प्रत्याख्यान ज्ञान ही है....** ज्ञान, अर्थात् आत्मा। यहाँ ज्ञान शब्द से आत्मा लिया है। सारा भगवान निर्मलानन्द वीतरागमूर्ति प्रभु जिनबिम्ब, यह आत्मा ही प्रत्याख्यान है। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए प्रत्याख्यान.... अर्थात् चारित्र अथवा प्रत्याख्यान (अर्थात्) राग का अभाव स्वभावरूप प्रत्याख्यान वह ज्ञान, वह आत्मा ही है। ज्ञान शब्द पड़ा है न? आहाहा! और १५५ में भी यही लिया है। '**जीवादि सद्दहणं**' आत्मा जो ज्ञानस्वरूप है, उसका परिणमन होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। तब ये लोग कहते हैं — इतना सब कठिन कर डाला है। अरे! कठिन नहीं, जैसा उसका स्वरूप है, वैसा ही कहा है भाई! आहाहा! पुण्य को विष्टा कहा, वहाँ शोर मचा देते हैं परन्तु भगवान ने तो पुण्य को जहर कहा है। विष्टा तो अभी सूअर खा सकता है, जहर तो मार डालता है। आहाहा! व्रत का परिणाम-शुभभाव, वह जहर है। आहाहा!

श्रोता : कोई उसे धर्म कहे और आप जहर कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे, क्या हो भाई! यह व्रत करते-करते सातवाँ (गुणस्थान) हो जायेगा? अरे! व्रत वह व्यवहार है, छठवें गुणस्थान तक व्यवहार है और सातवें में व्यवहार छूट जाये.... अरे भाई! तुझे पता नहीं है बापू! पहले तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो, फिर मुनिपना आने में पहले तो सातवाँ गुणस्थान आता है, पहले छठवाँ नहीं आता। आहाहा! सातवाँ आता है, फिर विकल्प आता है तो छठवें में आ जाता है। यह विकल्प तो आस्रव है, राग है, और उसमें आया तो अबुद्धिपूर्वक राग है परन्तु बुद्धिपूर्वक छूट गया तो इतना निरास्रव हो गया। आहाहा! चारित्र है, तीन कषाय का अभाव है, फिर भी मुनि को भी राग आता है, वह कलुषित है। अमृतचन्द्राचार्य ने तीसरे श्लोक में कहा है न? ओहो! आत्मज्ञान-सम्यग्दर्शन के उपरान्त छठवें गुणस्थान के योग्य जो चारित्रदशा हुई है परन्तु यह राग आया है, वह दुःखरूप है '**कलमाषितायं**' कलुषित भाव है। आहाहा! अतः मैं अपने शुद्ध चैतन्य का ध्येय रखकर टीका करूँगा और ध्येय के जोर से यह कलमाषित जो अशुद्ध परिणमन, वह छूट जाओ। आहाहा! और मैं शुद्धरूप परिणमन हूँ, वह मेरी भावना है, मुनि ऐसा कहते हैं। आचार्य (ऐसा कहते हैं।)। आहाहा!

ऐसा अनुभव करना चाहिए।.... देखा ? इसलिए प्रत्याख्यान आत्मा ही है। ज्ञान शब्द से आत्मा लिया है। **ऐसा अनुभव करना चाहिए,** ऐसा अनुभव करना चाहिए। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द के अनुसरण से स्थिरता का अनुभव करना चाहिए। निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान का अनुभव करना चाहिए, उसका नाम चारित्र है। आहाहा! अरे! धन्य भाग्य! यह प्रत्याख्यान और चारित्र, बापू! आहाहा! वह मोक्ष के आँगन में आ गया, आँगन में आ गया, अन्दर प्रवेश करेगा तब मोक्ष होगा। आहाहा!

भावार्थ विशेष आयेगा। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)